शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-4.0
Vol.-3; issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No- 322-331
DOI : 10.71037/Shodhaamrit.v3i1.42
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :
प्रशांत कुमार सिंह
शोधार्थी, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय (केंद्रीय विश्वविद्यालय), प्रयागराज, उत्तर प्रदेश.

Corresponding Author :
प्रशांत कुमार सिंह
शोधार्थी, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय (केंद्रीय विश्वविद्यालय), प्रयागराज, उत्तर प्रदेश.

हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद : अवधारणा और अभिव्यक्ति

सारांश : प्रस्तुत शोध पत्र हिन्दी साहित्य में 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की अवधारणा, उसके दार्शनिक अधिष्ठान और ऐतिहासिक विकास का गहन एवं विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। राष्ट्रवाद की पाश्चात्य और भारतीय संकल्पनाओं के मध्य विभेद स्थापित करते हुए, यह शोध पत्र स्पष्ट करता है कि भारत में राष्ट्रवाद मात्र एक भौगोलिक, राजनीतिक या आर्थिक परिघटना नहीं है, अपितु यह एक विशुद्ध सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चेतना है, जिसकी जड़ें वेदों, पुराणों और उपनिषदों तक जाती हैं। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त से लेकर महर्षि अरविन्द, स्वामी विवेकानंद के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद, तथा पंडित दीनदयाल उपाध्याय के 'एकात्म मानववाद' तक, भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की वैचारिकी का क्रमिक विवेचन किया गया है। साहित्य के संदर्भ में, यह पत्र सिद्ध, नाथ और भक्तिकाल की समन्वयवादी चेतना से होते हुए आधुनिक काल के नवजागरण तक की यात्रा का सूक्ष्म परीक्षण करता है। भारतेन्दु युग की आर्थिक-सांस्कृतिक प्रतिरोध चेतना, द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त की कृति 'भारत-भारती' के माध्यम से अतीत के गौरव गान, तथा छायावाद में जयशंकर प्रसाद (विशेषतः 'चन्द्रगुप्त' के गीतों) और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ('राम की शक्तिपूजा') के युगीन अंतर्द्वंद्व और सांस्कृतिक अस्मिता की खोज का मनोवैज्ञानिक एवं साहित्यिक विश्लेषण इस शोध का मुख्य केंद्र है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा (माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान) और रामधारी सिंह 'दिनकर' की कृति 'संस्कृति के चार अध्याय' के माध्यम से सामासिक संस्कृति के विमर्श को भी उद्घाटित किया गया है। अंततः, यह शोध पत्र स्थापित करता है कि हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद किसी भी प्रकार की संकीर्णता, आक्रामकता या अलगाववाद से मुक्त होकर मानवतावादी, समन्वयवादी और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के वैश्विक आदर्शों पर आधारित है।

मुख्य शब्द : सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, नवजागरण, हिन्दी साहित्य, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा, भारत-भारती, राम की शक्तिपूजा, सामासिक संस्कृति, एकात्म मानववाद।

1. प्रस्तावना: राष्ट्रवाद बनाम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणात्मक रुपरेखा : 'राष्ट्रवाद' आधुनिक विश्व के राजनीतिक, सामाजिक और अकादमिक विमर्श का एक अत्यंत महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। सामान्यतः पाश्चात्य राजनीतिक दर्शन में राष्ट्रवाद का उदय अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में हुआ, जिसे राज्य, निश्चित भौगोलिक सीमाओं, भाषा और साझा आर्थिक हितों के इर्द-गिर्द बुना गया। थॉमस कोहेन ने अपनी पुस्तक 'द आइडिया ऑफ नेशनलिज्म' में राष्ट्रवाद की व्याख्या करते हुए इसे मनुष्य की सबसे पुरानी और आदिम भावनाओं से उद्भूत माना है, जिसका जन्म स्थान के प्रति प्रेम और अपनी भाषा व संस्कृति के प्रति लगाव से होता है (कोहेन, 1944, पृ. 25)। पश्चिमी विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल के अनुसार, एक अर्थपूर्ण एवं स्वायत्त जीवन तथा उदार लोकतांत्रिक राजनीति के लिए राष्ट्रीय अस्मिता का बने रहना अत्यंत आवश्यक है (मिल, 1861, पृ. 85)।

किंतु, भारतीय चिंतन परंपरा में 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रवाद' की अवधारणा पश्चिम के राज्य-राष्ट्र मॉडल से सर्वथा भिन्न है। भारत में राष्ट्र का स्वरुप राजनीतिक न होकर मूलतः सांस्कृतिक रहा है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह माना जाता है कि "भारत की प्रकृति ही उसकी संस्कृति है, और जो यह संस्कृति है, वही भारत का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है" (जोशी, 1995, पृ. 12)। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक ऐसी विचारधारा है जो किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान, मूल्यों, परंपराओं और आध्यात्मिक मान्यताओं को राष्ट्र की एकता और संप्रभुता का मूल आधार मानती है (सिंह, 2020, पृ. 45)।

भारतीय वाङ्मय के वैदिक काल से ही ऋषियों ने मातृभूमि के प्रति जो श्रद्धा और समर्पण व्यक्त किया है, वह इसी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आदिम और विशुद्ध रुप है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त का यह उद्घोष— "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" (अर्थात् यह भूमि मेरी माता है और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ)— विश्व के प्रथम राष्ट्रीय गीत के रुप में स्वीकार किया जा सकता है, जो संपूर्ण राष्ट्र को एक आत्मीय और सांस्कृतिक सूत्र में पिरोता है (वेदव्यास, अथर्ववेद 12.1.12)।

साहित्य, समाज का केवल दर्पण ही नहीं होता, बल्कि वह समाज की सोई हुई चेतना को जागृत करने वाला सबसे सशक्त अस्त्र भी होता है। हिन्दी साहित्य ने आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक, विशेषकर ब्रिटिश औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध, जिस राष्ट्रीय चेतना का निर्माण किया, उसका मूल अधिष्ठान सांस्कृतिक ही था। साहित्यकारों ने यह भली-भांति समझ लिया था कि राजनीतिक परतंत्रता से मुक्ति तब तक संभव नहीं है, जब तक कि राष्ट्र की सांस्कृतिक आत्मा को हीनभावना की दासता से मुक्त न किया जाए (दिनकर, 1956, पृ. 14)। प्रस्तुत शोध पत्र हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालखंडों में इसी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा, उसके दार्शनिक विकास और उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति की बहुआयामी एवं सूक्ष्म पड़ताल करता है।

2. भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का दार्शनिक एवं वैचारिक अधिष्ठान : हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का मूल्यांकन करने से पूर्व, इसके दार्शनिक और वैचारिक अधिष्ठान को समझना अपरिहार्य है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के निर्माण में स्वामी दयानंद सरस्वती, महर्षि अरविन्द, स्वामी विवेकानंद, बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय और पंडित दीनदयाल उपाध्याय जैसे विचारकों का महती योगदान रहा है।

2.1. स्वामी दयानंद सरस्वती और आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की नींव : 1772 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के दौरान वारेन हेस्टिंग्स ने बंगाल में डायरेक्टर्स की मीटिंग में कहा था कि यदि भारत पर शासन करना है, तो हमें इसकी संस्कृति और सभ्यता के मानक मूल्यों के आधार पर ही शासन करना होगा (हेस्टिंग्स, 1772, पृ. 18)। इसके प्रतिकार स्वरुप स्वामी दयानंद सरस्वती ने भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा को प्रखरता से प्रस्तुत किया। उन्होंने भौतिक समृद्धि के बजाय नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक सुधार पर जोर दिया। उनका राष्ट्रवाद संकीर्ण नहीं था; वे उन लोगों के चरित्र और स्वाद को बदलना चाहते थे जो घोर भौतिकवादी हो गए थे। दयानंद जी ने स्पष्ट किया कि भारत का वैचारिक आधार अध्यात्मवाद है, और इसी अध्यात्मवाद पर आधारित राष्ट्रवाद ही भारत की वास्तविक शक्ति है (सरस्वती, 1875, पृ. 110)।

2.2. महर्षि अरविन्द और स्वामी विवेकानंद का मानवतावादी दृष्टिकोण : महर्षि अरविन्द ने राष्ट्रवाद को केवल

एक राजनीतिक कार्यक्रम या राजनीतिक स्वतंत्रता के साधन के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसे एक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की संज्ञा दी। उनका स्पष्ट मानना था कि भारत की आत्मा उसकी प्राचीन संस्कृति में निहित है, और राष्ट्र का मुख्य उद्देश्य उस सनातन आत्मा को जागृत कर उसे विश्व कल्याण के लिए समर्पित करना है (अरविन्द, 1907, पृ. 45)। पश्चिमी राष्ट्रवाद जहाँ संकीर्ण, आक्रामक और शक्ति-केंद्रित है, वहीं अरविन्द का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद समावेशी, मानवतावादी और आध्यात्मिक है।

इसी प्रकार, स्वामी विवेकानंद ने भी स्पष्ट किया कि प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक मुख्य स्वर होता है, जिस पर अन्य सभी तत्व निर्भर करते हैं। भारत के लिए यह मुख्य स्वर 'धर्म' और 'आध्यात्मिकता' है (विवेकानंद, 1897, पृ. 120)। विवेकानंद का राष्ट्रवाद धर्मनिरपेक्षता पर आधारित पश्चिमी राष्ट्रवाद के विपरीत, नैतिकता और मानववाद की आधारशिला पर टिका था। उन्होंने जन-शिक्षा और मस्तिष्क के वि-औपनिवेशीकरण पर बल दिया। उनका मानना था कि भारतीय लोग गहन धार्मिक प्रकृति के हैं, और इसी से उन्हें एकजुट करने की शक्ति प्राप्त की जा सकती है (विवेकानंद, 1897, पृ. 122)।

2.3. बंकिम चंद्र की उद्घोषणा और दीनदयाल उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद' : बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय का कालजयी गीत 'वंदे मातरम्' सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की पहली सशक्त आधुनिक उद्घोषणा माना जाता है (शाह, 2025, पृ. 1)। उन्होंने भारत को केवल एक भौगोलिक इकाई न मानकर 'भारत माता' के रूप में एक सजीव, दैवीय और सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में स्थापित किया। उन्होंने 'माता' की कल्पना दुर्गा, कमला और वाणी के रूप में की, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन को एक प्रचंड सांस्कृतिक ऊर्जा प्रदान की (चट्टोपाध्याय, 1882, पृ. 15)। किरणचंद्र बंद्योपाध्याय ने 1873 ई. में अपने नाटक 'भारतमाता' में सर्वप्रथम भारत को माता के रूप में चित्रित किया था, जो विश्व के किसी अन्य राष्ट्र में नहीं देखा गया (बंद्योपाध्याय, 1873, पृ. 10)।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत, पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की सबसे परिपक्व दार्शनिक व्याख्या 'एकात्म मानववाद' के रूप में प्रस्तुत की। उन्होंने स्पष्ट किया कि राष्ट्र का निर्माण केवल 'भूमि' और 'जन' से नहीं होता, बल्कि उसमें 'संस्कृति' का समावेश अनिवार्य है। उनके अनुसार, "संस्कृति राष्ट्र का शरीर है, 'चिति' उसकी आत्मा है, और 'विराट' उसका प्राण है" (उपाध्याय, 1965, पृ. 50)। पाश्चात्य दृष्टिकोण व्यक्तिवाद, समाजवाद और साम्यवाद जैसी खंडित वैचारिकियों पर आधारित है, जबकि भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद समष्टिगत कल्याण और सर्वसमावेशी दर्शन पर टिका है। उपाध्याय जी ने चेतावनी दी कि यदि भारत अपनी राष्ट्रीय पहचान और चिति की उपेक्षा कर पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करेगा, तो उसका पतन निश्चित है (उपाध्याय, 1965, पृ. 55)।

राष्ट्रवाद के प्रकार	पश्चिमी राष्ट्रवाद	भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद
मूल आधार	भौगोलिक सीमाएँ, राजनीतिक राज्य, साझा आर्थिक हित।	साझा संस्कृति, इतिहास, आध्यात्मिक मूल्य और परंपराएँ।
प्रकृति	भौतिकवादी, अधिकार-केंद्रित, और अक्सर आक्रामक।	आध्यात्मिक, कर्तव्य-केंद्रित, और सर्वसमावेशी (वसुधैव कुटुम्बकम्)।
उद्देश्य	राज्य की शक्ति का विस्तार और भौतिक प्रभुत्व।	विश्व कल्याण, मानवता का उत्थान और आंतरिक दिव्य चेतना की जागृति।
प्रमुख विचारक	मैजिनी, रेनन, गैरीबाल्डी, थॉमस कोहेन आदि।	स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविन्द, बंकिम चंद्र, दीनदयाल उपाध्याय।

3. प्राचीन वाङ्मय से रीतिकाल तक हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक चेतना : यद्यपि 'राष्ट्रवाद' का आधुनिक राजनीतिक स्वरूप ब्रिटिश काल की देन माना जाता है, तथापि सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रबोध भारतीय वाङ्मय और हिन्दी साहित्य के आदिकाल से ही निरंतर प्रवाहित होता रहा है। भारत में जब भी समाज को एकता के सूत्र में पिरोने का प्रयास किया गया, उसका आधार सदैव सांस्कृतिक ही रहा (ऋषिकल्प, 2021, पृ. 1)।

3.1. वैदिक एवं पौराणिक संदर्भ : भारत की राष्ट्रीय चेतना वेदकाल से ही अस्तित्वमान है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त के अतिरिक्त, 'विष्णुपुराण' में राष्ट्र के प्रति श्रद्धाभाव अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई देता है। इसमें भारत का यशोगान 'पृथ्वी पर स्वर्ग' के रूप में किया गया है: "गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत-भूमि भागे। स्वर्गापवर्गास्पदमार्गे भूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥" (विष्णुपुराण, 2.3.24)।

इसी प्रकार, 'वायुपुराण' में भारत को अद्वितीय कर्मभूमि बताया गया है, और 'भागवतपुराण' में इसे संपूर्ण विश्व में 'सबसे पवित्र भूमि' कहा गया है जहाँ देवता भी जन्म लेने की अभिलाषा रखते हैं (भागवतपुराण, 5.19.21)। वाल्मीकि रामायण का प्रसिद्ध श्लोक "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का वह बीज-मंत्र है जिसने सदियों तक भारतीय जनमानस को अनुप्राणित किया (वाल्मीकि, रामायण, 6.124.17)। संकल्प मंत्रों में "जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते..." का नित्य उच्चारण संपूर्ण भारत को एक सांस्कृतिक-भौगोलिक इकाई के रूप में पिरोने का प्राचीनतम प्रयास है (आडवाणी, 2008, पृ. 45)।

3.2. आदिकाल और भक्तिकाल में सामाजिक-सांस्कृतिक एकता : हिन्दी साहित्य के आदिकाल में यद्यपि सिद्ध, जैन और नाथ साहित्य में वैराग्य की प्रधानता थी, परंतु उन्होंने समाज की रूढ़ियों पर प्रहार कर एक समतामूलक समाज की नींव रखी (राम, 2017, पृ. 3)। रासो साहित्य में व्यापक राष्ट्रीयता का अभाव दिखता है और संकुचित राजपूती गौरव अधिक मुखर है; यहाँ तक कि पृथ्वीराज और गोरी के संघर्ष को भी राष्ट्रीय संघर्ष के रूप में नहीं देखा गया। फिर भी, हेमचन्द्र जैसे कवियों के काव्य में अपनी अस्मिता को बचाने का अचेतन संघर्ष विद्यमान था (राम, 2017, पृ. 4)। वास्तविक सांस्कृतिक एकीकरण का कार्य भक्तिकाल ने किया। कबीर, सूरदास, तुलसीदास और जायसी ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज को सांस्कृतिक रूप से एकसूत्र में बांधा। कबीरदास की पंक्तियाँ: "हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या। रहें आबाद या जग में, हमन दुनिया से यारी क्या॥" (कबीर ग्रंथावली, पद 21)

यह एक ऐसी आध्यात्मिक समरसता का उद्घोष करती हैं जो संकीर्ण सांप्रदायिक भेदों से ऊपर उठकर मानवतावादी राष्ट्रवाद का मार्ग प्रशस्त करती है। सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना कर हिंदू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय का अभूतपूर्व प्रयास किया (ऋषिकल्प, 2021, पृ. 3)।

गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरितमानस' भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का एक महाकाव्यात्मक ग्रंथ है। तुलसीदास ने अपने समय के विखंडित समाज को 'समन्वय' के सूत्र में बांधा। उनका दर्शन— "परहित सरिस धरम नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई"—ने भारतीय जनमानस को अकल्पनीय सांस्कृतिक दृढ़ता प्रदान की (तुलसीदास, रामचरितमानस, 7.41.1)। मीराबाई का विद्रोही स्वर भी सामाजिक रुढ़ियों को तोड़कर एक नई आध्यात्मिक स्वतंत्रता की घोषणा था।

3.3. रीतिकाल का जातीय गौरव : रीतिकाल में यद्यपि श्रृंगार और दरबारी संस्कृति का प्राधान्य था, किंतु महाकवि भूषण जैसे कवियों ने वीर रस की कविताओं के माध्यम से हिंदू जाति की सांस्कृतिक अस्मिता और गौरव को पुनर्जीवित किया। शिवाजी और छत्रसाल की वीरता का उनका गान किसी संकीर्ण जातिवाद का नहीं, अपितु विदेशी आक्रांताओं और उनकी क्रूर नीतियों के विरुद्ध सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का प्रखर प्रकटीकरण था (राम, 2017, पृ. 5)।

4. आधुनिक काल: सांस्कृतिक नवजागरण और भारतेन्दु युग (1857-1900) : 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भारतीय इतिहास की वह युगांतरकारी घटना है जिसने आधुनिक राष्ट्रवाद की नींव रखी। प्रख्यात आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने 1857 की क्रांति को राजनीतिक चेतना और आधुनिक साहित्य के नवजागरण के केंद्र में रखा है (शर्मा, 1979, पृ. 45)। वहीं रामस्वरूप चतुर्वेदी 'नवजागरण' को "दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से पैदा हुई वैचारिक ऊर्जा" के रूप में पारिभाषिक करते हैं; यहाँ ये दो संस्कृतियाँ यूरोपीय और भारतीय थीं (चतुर्वेदी, 1996, पृ. 94)। भारत में विदेशी आक्रमण पहले भी हुए, परंतु इस्लाम के आगमन पर सैनिक टकराहट तो हुई,

किन्तु गहरा सांस्कृतिक नवजागरण नहीं हुआ, क्योंकि दोनों धर्म-प्रधान संस्कृतियाँ थीं। लेकिन ब्रिटिश आगमन के साथ आधुनिक तार्किकता और भारतीय आध्यात्मिकता का जो द्वंद्व हुआ, उसने आधुनिक नवजागरण को जन्म दिया (चतुर्वेदी, 1996, पृ. 95)।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र (1850-1885) के आगमन के साथ हिन्दी साहित्य में इस नवजागरण का शंखनाद हुआ। भारतेन्दु युग की राष्ट्रीय चेतना पूर्णतः 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के धरातल पर खड़ी थी, जहाँ एक ओर देश-प्रेम, स्वदेशी का आह्वान और प्राचीन गौरव का गान था, तो दूसरी ओर अंग्रेजी साम्राज्यवाद द्वारा किए जा रहे आर्थिक और सांस्कृतिक शोषण का तीव्र प्रतिरोध भी था (चतुर्वेदी, 1996, पृ. 97)। भारतेन्दु जी ने लोक-संस्कृति के माध्यम से—भजन, कीर्तन, नाटक, और 'जातीय संगीत' के द्वारा—जनता में सोई हुई राष्ट्रीयता को जगाया (हरिश्चंद्र, 1880, पृ. 12)। उनके प्रसिद्ध नाटक 'भारत दुर्दशा' में सांस्कृतिक और आर्थिक राष्ट्रवाद का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है: "अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी। पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी॥" (हरिश्चंद्र, 1880, पृ. 15)

इस युग के अन्य रचनाकारों—जैसे प्रतापनारायण मिश्र ('महापर्व', 'नया संवत'), बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ('आनन्द अरुणोदय'), राधाकृष्ण दास ('भारत बारहमासा') और राधाचरण गोस्वामी ('हमारो उत्तम भारत देश')—ने सामाजिक कुरीतियों (बाल-विवाह, भ्रूण-हत्या, छुआछूत) के उन्मूलन और स्वदेशी वस्तुओं व मातृभाषा के प्रयोग पर बल दिया (राम, 2017, पृ. 6)। निज भाषा की उन्नति को उन्होंने सांस्कृतिक अस्मिता का मूल माना। इस प्रकार भारतेन्दु युग ने उस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की आधारशिला रखी जो मात्र राजनीतिक स्वाधीनता तक सीमित नहीं था, बल्कि समाज के सर्वांगीण पुनरुत्थान का पक्षधर था।

5. द्विवेदी युग: अतीत का गौरव गान और 'भारत-भारती' का शंखनाद (1900-1918) : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में द्विवेदी युग ने भारतेन्दु युग की चेतना को अधिक परिपक्व, अनुशासित और बौद्धिक स्वरुप प्रदान किया। 1903 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका का कार्यभार संभालने के पश्चात् द्विवेदी जी ने साहित्यकारों को पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान से परिचित कराने के साथ-साथ अपने देश की सांस्कृतिक जड़ों के प्रति भी सचेत किया (द्विवेदी, 1934, पृ. 15)।

इस काल के कवियों का राष्ट्रप्रेम सामयिक रुदन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने समस्याओं के कारणों का तार्किक अन्वेषण किया और समाधान प्रस्तुत किए (राम, 2017, पृ. 7)। इस युग में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का सबसे उज्ज्वल और युगान्तकारी रूप राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की अमर कृति **'भारत-भारती'** में प्रस्फुटित हुआ।

5.1. मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती': सांस्कृतिक नवजागरण का ऐतिहासिक दस्तावेज़ : मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' के लेखन का आरंभ 1911 ई. में रामनवमी के दिन किया था और इसका समापन 1912 ई. में जन्माष्टमी के दिन हुआ। अनेक संशोधनों के पश्चात् यह 1914 में व्यापक रूप से प्रकाशित हुई (गुप्त, 1912, प्रस्तावना)। इस कृति की प्रेरणा उन्हें राजा रामपाल सिंह और मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली के 'मुसद्दस' से प्राप्त हुई थी (शुक्ल, 1999, पृ. 613)। 'भारत-भारती' ने सुप्त भारतीय जनमानस में वह संजीवनी फूंकी जिसने संपूर्ण राष्ट्र को झकझोर कर रख दिया। महात्मा गांधी ने इस कृति के व्यापक प्रभाव को देखते हुए ही गुप्त जी को 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से विभूषित किया था (नगेन्द्र, 2012, पृ. 487)।

'भारत-भारती' तीन खंडों में विभक्त है: अतीत खंड, वर्तमान खंड, और भविष्यत् खंड (गुप्त, 1912, पृ. 7)।

अतीत खंड: इसमें गुप्त जी ने भारत के स्वर्णिम इतिहास, वैदिक ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, कला-कौशल, सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक संपदा का अद्भुत काव्यात्मक चित्रण किया है, ताकि देशवासी अपने हीनता-बोध से बाहर आ सकें।

वर्तमान खंड: इसमें समकालीन भारत की दुर्दशा, दारिद्रय, नैतिक पतन, और आपसी भेदभाव का यथार्थवादी और मर्मस्पर्शी चित्रण है। उन्होंने ब्राह्मणों, उपदेशकों और संतों के मिथ्या-व्यवहार पर भी कड़े प्रहार किए (गुप्त, 1912, पृ. 30)।

भविष्यत् खंड: यहाँ कवि निराश नहीं है, बल्कि वह भविष्य के प्रति आशावान दृष्टि रखते हुए नवजागरण का संदेश देता है (गुप्त, 1912, पृ. 167)।

उनकी यह पंक्ति पूरे युग का सांस्कृतिक और राष्ट्रीय घोषणापत्र बन गई थी: "हम क्या थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी। आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्याएँ सभी॥" (गुप्त, 1912, पृ. 157)

गुप्त जी का राष्ट्रवाद संकीर्ण नहीं था; वे दलितों, वंचितों और नारी-स्वतंत्रता के पक्षधर थे, और उनकी सांस्कृतिक चेतना एक समतामूलक समाज के निर्माण का आह्वान करती थी (सिंह, 2005, पृ. 23)। इसी युग में गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और रामचरित उपाध्याय जैसे कवियों ने भी सांस्कृतिक गौरव और स्वदेश-प्रेम को अपनी लेखनी का विषय बनाया (सनेही, 1915, पृ. 20)। सनेही जी की यह पंक्तियाँ सांस्कृतिक गौरव को रेखांकित करती हैं: "जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है। वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक समान है॥" (राम, 2017, पृ. 7)

6. छायावाद: युगीन अंतर्द्वंद्व और सांस्कृतिक चेतना का उत्कर्ष (1918-1938) : हिन्दी साहित्य में 1918 से 1938 तक का कालखंड 'छायावाद' के नाम से जाना जाता है। सतही तौर पर इसे प्रकृति प्रेम, रहस्यवाद और वैयक्तिक अनुभूतियों का काव्य माना गया, किंतु गहराई में जाने पर स्पष्ट होता है कि यह युग भारतीय इतिहास के सबसे प्रखर सांस्कृतिक नवजागरण का काल था। डॉ. रामस्वरुप चतुर्वेदी और नामवर सिंह जैसे मूर्धन्य आलोचकों ने छायावाद को राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण का 'स्वर्णकाल' माना है (चतुर्वेदी, 1996, पृ. 97)।

इस समय देश में महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन (1920) और सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930) चल रहे थे (शर्मा, 1979, पृ. 110)। छायावादी कवियों (जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा) ने अपनी कविताओं में प्रत्यक्ष राजनीतिक नारों के स्थान पर, भारतीय संस्कृति की सूक्ष्म, दार्शनिक और उदात्त चेतना को जगाने का कार्य किया, जो विदेशी दासता के विरुद्ध एक मनोवैज्ञानिक अस्त्र सिद्ध हुआ (नगेन्द्र, 2011, पृ. 350)।

6.1. जयशंकर प्रसाद के नाटकों और काव्यों में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद : जयशंकर प्रसाद ने अपनी ऐतिहासिक दृष्टि और कल्पना के मणिकांचन संयोग से 'चन्द्रगुप्त' (1931), 'स्कन्दगुप्त' (1928), और 'अजातशत्रु' (1922) जैसे नाटकों की रचना की। उनका उद्देश्य मात्र इतिहास-लेखन नहीं था, अपितु अतीत के स्वर्ण-पृष्ठों के माध्यम से वर्तमान की राजनीतिक पराधीनता के विरुद्ध जनमानस को उद्वेलित करना था (प्रसाद, 1931, भूमिका)।

'चन्द्रगुप्त' नाटक में जब यवन आक्रमणकारी भारत को रौंदने का प्रयास करते हैं, तो प्रसाद जी अलका के माध्यम से वह कालजयी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक गीत गवाते हैं, जो स्वतंत्रता-समर का महामंत्र बन गया और जिसने युवाओं में वीरत्व और उत्साह का संचार किया: "हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती, स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती। अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो, प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।" (प्रसाद, 1931, पृ. 145) प्रसाद जी का राष्ट्रवाद अत्यंत समावेशी और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से ओत-प्रोत है। उनके राष्ट्रवाद में संकीर्णता के लिए कोई स्थान नहीं है। इसी नाटक में विदेशी नारी भारत के प्राकृतिक और सांस्कृतिक सौंदर्य पर मुग्ध होकर गाती है: "अरुण यह मधुमय देश हमारा। जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।" (प्रसाद, 1931, पृ. 56)

'स्कन्दगुप्त' नाटक में देवसेना और पर्णदत्त द्वारा भीख मांगकर सेना के लिए धन एकत्रित करना प्रखर राष्ट्रीय चेतना का परिचायक है। देवसेना अपने व्यक्तिगत प्रेम को राष्ट्र की बलिवेदी पर न्योछावर कर देती है (प्रसाद, 1928, पृ. 89)।

उनके महाकाव्य **'कामायनी' (1936)** में भी देव-संस्कृति के पतन और मानव-संस्कृति के उदय का रूपक प्रस्तुत किया गया है। कामायनी में प्रसाद जी ने 'समन्वय' के सिद्धांत पर बल दिया, जो भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मूल तत्त्व है: "शक्ति के विद्युत कण जो व्यस्त, विकल्प बिखरे हैं हो निरुपाय। समन्वय उसका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय॥" (प्रसाद, 1936, पृ. 250)

6.2. निराला की 'राम की शक्तिपूजा': औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक संघर्ष : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कालजयी रचना **'राम की शक्तिपूजा' (1936)** हिन्दी कविता में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का चरमोत्कर्ष है (शर्मा, 1979, पृ. 120)। निराला जी ने इसका सृजन 23 अक्टूबर 1936 को पूर्ण किया था और यह सर्वप्रथम इलाहाबाद से प्रकाशित दैनिक समाचार पत्र 'भारत' में 26 अक्टूबर 1936 को प्रकाशित हुई। बाद में इसे 1939 में 'अनामिका' के द्वितीय संस्करण में संकलित किया गया (निराला, 1939, पृ. 45)।

312 पंक्तियों की यह लंबी कविता 'शक्ति' छंद में रची गई है और इसका आधार बांग्ला की कृत्तिवास रामायण है (निराला, 1939, पृ. 46)। यद्यपि यह एक पौराणिक आख्यान है, तथापि यह अपने समय के राजनीतिक, सामाजिक यथार्थ और युगीन अंतर्द्वंद्व का एक अत्यंत सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक रूपक है।

इसमें 'राम' शोषित, पराधीन किंतु संघर्षरत भारतीय आत्मा के प्रतीक हैं, और 'रावण' अन्यायी, दमनकारी ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रतीक है। कविता का आरंभ ही इस भीषण संघर्ष और राम की हताशा से होता है: "रवि हुआ अस्त; ज्योति के पत्र पर लिखा अमर रह गया राम-रावण का अपराजेय समर" (निराला, 1939, पृ. 1)

जब राम देखते हैं कि रावण को शक्ति का संरक्षण प्राप्त है— "अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति"—तो वे हताश हो जाते हैं (निराला, 1939, पृ. 5)। यह हताशा उस समय भारतीय जनमानस में व्याप्त हताशा का सटीक चित्रण है। तब जाम्बवान उन्हें मौलिक 'शक्ति' की उपासना का परामर्श देते हैं: "करो मौलिक कल्पना, करो पूजन।" यहाँ 'शक्ति' का अर्थ भारतीय संस्कृति की उस मूल, अपराजेय ऊर्जा से है जो सदियों से सुप्त थी (शर्मा, 1979, पृ. 125)। निराला यह स्थापित करते हैं कि विदेशी साम्राज्यवाद को केवल राजनीतिक दांव-पेंचों से नहीं हराया जा सकता, इसके लिए राष्ट्र को अपनी सांस्कृतिक 'शक्ति' को जागृत करना होगा।

निराला की एक अन्य महत्वपूर्ण कविता **'तुलसीदास'** भी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ वे भारतीय संस्कृति के पतन के अंधकार में तुलसीदास को एक 'सांस्कृतिक सूर्य' के रूप में उदित होता हुआ दिखाते हैं: "भारत के नभ का प्रभापूर्ण, शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य। अस्तमित आज रे तमस्तूय दिगमंडल..." (निराला, 1938, पृ. 12)। वे समाज के रुढ़िवादी विधानों को तोड़कर एक नई सांस्कृतिक एकता स्थापित करने का आह्वान करते हैं।

7. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा: स्वातंत्र्य समर की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति : छायावाद के समानांतर एक ऐसी काव्यधारा भी प्रवाहित हो रही थी जो रहस्य या प्रतीकों के आवरण को त्यागकर, सीधी और ओजस्वी भाषा में राष्ट्र-प्रेम, बलिदान और स्वदेशाभिमान की बात कर रही थी। इसे अकादमिक विमर्श में 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा' कहा जाता है (चतुर्वेदी, 1996, पृ. 110)। इस धारा के कवियों ने दो मोर्चों पर संघर्ष किया: एक ओर उन्होंने भारत की आंतरिक विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए देश का आह्वान किया, और दूसरी ओर जनता को विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़ने की प्रेरणा दी। इस धारा के प्रमुख कवि माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामनरेश त्रिपाठी और सोहनलाल द्विवेदी थे, जिन्होंने केवल कलम ही नहीं चलाई, बल्कि स्वयं स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदारी निभाते हुए जेल यात्राएँ भी कीं।

7.1. माखनलाल चतुर्वेदी : चतुर्वेदी जी किशोरावस्था में बाल गंगाधर तिलक के उग्रवादी विचारों से प्रभावित थे, परंतु बाद में महात्मा गांधी के व्यक्तित्व और सत्याग्रह दर्शन का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। 1920 में उन्होंने 'तिलक' नामक एक लंबी कविता लिखी (चतुर्वेदी, 1920, पृ. 10)। उनकी कविताओं में बलिदान, प्राणोत्सर्ग और गांधीवादी मूल्यों का अद्भुत संगम है। उनकी कालजयी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की वेदी पर सर्वस्व न्योछावर करने का चरम आदर्श प्रस्तुत करती है: "मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक। मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक॥" (चतुर्वेदी, 1922, पृ. 25)

7.2. सुभद्रा कुमारी चौहान और अन्य कवि : सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी ओजस्वी वाणी से भारतीय युवाओं की नसों में रक्त का संचार किया। 'वीरों का कैसा हो वसंत' और 'झाँसी की रानी' जैसी कविताएँ भारत के अतीत

के शौर्य को वर्तमान के संघर्ष से जोड़ती हैं, जो सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अनिवार्य प्रक्रिया है (चौहान, 1930, पृ. 15)। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अपनी 'विप्लव गायन' कविता में जड़ता को तोड़कर नवनिर्माण का आह्वान किया, और रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' और 'स्वप्न' जैसे खंडकाव्यों के माध्यम से देशप्रेम को एक उदात्त प्रेम के रूप में प्रतिष्ठित किया।

सारणी 1: प्रमुख राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कवि और उनकी रचनाओं में राष्ट्रवाद का स्वर

कवि का नाम	प्रमुख रचनाएँ / कविताएँ	सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मूल स्वर
मैथिलीशरण गुप्त	भारत-भारती, साकेत, जयद्रथ वध	अतीत का गौरव गान, वर्तमान पर क्षोभ, भविष्य की आशा, सांस्कृतिक समन्वय और नैतिकता।
माखनलाल चतुर्वेदी	हिमकिरीटिनी, पुष्प की अभिलाषा	आत्मबलिदान, गांधीवादी चेतना, सत्याग्रह और मातृभूमि के प्रति उत्कट भक्ति।
सुभद्रा कुमारी चौहान	झाँसी की रानी, वीरों का कैसा हो वसंत	ऐतिहासिक शौर्य का स्मरण, नारी सशक्तिकरण, ओज, उल्लास और मातृभूमि प्रेम।
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	उर्मिला, विप्लव गायन	क्रांति का प्रखर आह्वान, सामाजिक जड़ता का विनाश, और यौवन का प्रचंड उल्लास।
सोहनलाल द्विवेदी	भैरवी, युगधार	गांधीवाद का प्रबल समर्थन, खादी, स्वदेशी का गौरव गान और अहिंसक प्रतिरोध।

8. उत्तर-छायावाद और रामधारी सिंह 'दिनकर': सामासिक संस्कृति का विमर्श : स्वतंत्रता पूर्व के अंतिम दशक और स्वातंत्र्योत्तर भारत में राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सबसे सशक्त हस्ताक्षर रामधारी सिंह 'दिनकर' रहे। दिनकर को 'समय सूर्य' और द्वितीय राष्ट्रकवि भी कहा जाता है। दिनकर का राष्ट्रवाद धार्मिक या जातीय श्रेष्ठता से कोसों दूर था; उनके लिए राष्ट्रवाद का अर्थ था—समाज में समानता, न्याय, स्वतंत्रता और बंधुत्व की स्थापना (दिनकर, 1946, पृ. 12)। वे मानते थे कि राष्ट्रवाद केवल झंडा फहराने या नारे लगाने में नहीं, बल्कि समाज को समतामूलक, न्यायपूर्ण और प्रगतिशील बनाने में है।

8.1. गद्य में राष्ट्रवाद: 'संस्कृति के चार अध्याय' : सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के गद्य-विमर्श में दिनकर जी के महाग्रंथ **'संस्कृति के चार अध्याय'** का स्थान अद्वितीय है, जिसे तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की पुस्तक से प्रेरित भी माना जाता है। इस अप्रतिम कार्य के लिए दिनकर जी को 1959 में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया (दिनकर, 1956, प्रस्तावना)।

इस पुस्तक में दिनकर जी ने अत्यंत वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टि से स्पष्ट किया है कि भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसकी 'सामासिकता' और 'समन्वयवादिता' है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के इतिहास को चार बड़ी क्रान्तियों में विभक्त किया है (दिनकर, 1956, पृ. 43):

प्रथम अध्याय: भारत में आर्यों और आर्येतर जातियों का मिलन, जिससे एक नई समन्वित संस्कृति और वर्ण व्यवस्था का उदय हुआ (दिनकर, 1956, पृ. 46)।

द्वितीय अध्याय: वैदिक धर्म के कर्मकांडों के विरुद्ध महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध का वैचारिक एवं दार्शनिक विद्रोह, जिसने अहिंसा और करुणा को स्थापित किया।

तृतीय अध्याय: भारत में इस्लाम का आगमन और हिंदू-मुस्लिम संस्कृतियों के मध्य अंतःक्रिया, जिसके फलस्वरूप सूफी और भक्ति आंदोलन का अभूतपूर्व समन्वय हुआ।

चतुर्थ अध्याय: भारत में यूरोपीय संस्कृति का आगमन और शिक्षा नीति का प्रभाव, जिसने आधुनिक भारतीय नवजागरण का सूत्रपात किया (दिनकर, 1956, पृ. 120)।

दिनकर जी ने यह स्थापित किया कि भारत में उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक भले ही क्षेत्रीय, भाषाई या धार्मिक विविधताएँ हों, किंतु उन सबके भीतर एक ही अखंड 'सांस्कृतिक एकता' प्रवाहित होती है

(दिनकर, 1956, पृ. 18)। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जब देश सांप्रदायिक और भाषाई आधार पर बँट रहा था, तब दिनकर का यह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद किसी भी प्रकार की धार्मिक कट्टरता या अलगाववाद का निषेध करते हुए देश को एकता के सूत्र में पिरोने का भगीरथ प्रयास था।

8.2. काव्य में राष्ट्रवाद : काव्य के धरातल पर, दिनकर ने **'रश्मिरथी'** में कर्ण के चरित्र के माध्यम से भारतीय मूल्यों—त्याग, दान, आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय—को पुनर्स्थापित किया। कर्ण का संपूर्ण संघर्ष जन्मना जाति-व्यवस्था के विरुद्ध कर्मणा श्रेष्ठता का उद्घोष है (दिनकर, 1952, पृ. 35)। **'कुरुक्षेत्र'** में वे द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका के पश्चात् युद्ध और शांति के दर्शन पर विचार करते हुए स्पष्ट करते हैं कि जब तक समाज में न्याय और समानता नहीं होगी, तब तक सच्ची शांति स्थापित नहीं हो सकती (दिनकर, 1946, पृ. 40)। वे मानसिक और सांस्कृतिक दासता से मुक्ति को ही सच्ची स्वतंत्रता मानते हैं, और उनकी दृष्टि में हिन्दी भाषा राष्ट्रीय एकता का सबसे सशक्त माध्यम है।

9. समकालीन गद्य साहित्य में सांस्कृतिक अस्मिता की तलाश : आधुनिक और समकालीन हिन्दी गद्य में भी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अनुगूँज निरंतर सुनाई देती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय चेतना का रूपांतरण आधुनिकता के बौद्धिक विमर्श के रूप में हुआ (चतुर्वेदी, 1996, पृ. 125)।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी: इनके उपन्यासों और निबंधों में भारतीय संस्कृति की जीवंतता और उसकी ग्रहणशीलता का गहन विश्लेषण है। द्विवेदी जी मानते थे कि भारतीय संस्कृति एक विशाल समुद्र है जिसमें अनेक विदेशी धाराएँ आकर विलीन हुई हैं, परंतु समुद्र का मूल खारापन अक्षुण्ण रहा है (द्विवेदी, 1948, पृ. 55)।

विद्यानिवास मिश्र: मिश्र जी के ललित निबंध भारतीय ग्राम्य जीवन और रामायण-महाभारत की लोक-चेतना को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के शाश्वत प्रतीक के रूप में स्थापित करते हैं (मिश्र, 1974, पृ. 10)।

समकालीन विमर्श: वर्तमान समय में उद्भ्रांत, नरेन्द्र कोहली और मृदुला सिन्हा जैसे रचनाकारों ने पाश्चात्य विमर्शों का प्रत्याख्यान करते हुए भारतीय संस्कृति के उदात्त शील और मूल्यों को पुनर्स्थापित किया है, जो सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के समकालीन वैचारिक युद्ध का ही एक हिस्सा है (ऋषिकल्प, 2021, पृ. 5)।

10. निष्कर्ष : संपूर्ण विवेचन के आधार पर यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' एक अत्यंत सुदृढ़, बहुआयामी और विकासशील वैचारिकी रही है। भारत में राष्ट्रवाद का जन्म अठारहवीं सदी के यूरोपीय दर्शन, अंग्रेजों की प्रशासनिक व्यवस्था या पश्चिमी शिक्षा का परिणाम मात्र नहीं है; यह एक सनातन भू-सांस्कृतिक अवधारणा है जो 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' के वेदमंत्र से अंकुरित होकर साहित्य के विभिन्न कालखंडों में पुष्पित-पल्लवित हुई है (वेदव्यास, अथर्ववेद 12.1.12)।

हिन्दी साहित्यकारों—भारतेन्दु हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', माखनलाल चतुर्वेदी और रामधारी सिंह 'दिनकर'—ने अपने साहित्य के माध्यम से यह अकाट्य रूप से प्रमाणित किया कि राष्ट्र का निर्माण केवल भौगोलिक सीमाओं, सेनाओं या राजनीतिक संधियों से नहीं होता, बल्कि वह उस भूमि पर रहने वाले जन और उनकी उस साझा संस्कृति से होता है जो उन्हें एक अदृश्य, किंतु अभेद्य सूत्र में बांधे रखती है (दिनकर, 1956, पृ. 18)।

हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त सांस्कृतिक राष्ट्रवाद संकीर्ण, विस्तारवादी, जातिवादी या आक्रामक नहीं है। यह पश्चिमी राष्ट्रवाद के बहिष्कारवादी चरित्र का पूर्णतः निषेध करता है (शाह, 2025, पृ. 2)। इसके विपरीत, यह एक विशुद्ध मानवतावादी, समन्वयवादी और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उदात्त आदर्शों पर आधारित राष्ट्रवाद है। यह अपनी जड़ों पर गर्व करता है, अपनी ही सामाजिक कुरीतियों पर निर्मम प्रहार करता है, और अंततः संपूर्ण विश्व के आध्यात्मिक कल्याण की कामना करता है (उपाध्याय, 1965, पृ. 60)। अतः, हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अध्ययन वस्तुतः भारत की अजर-अमर आत्मा का अध्ययन है, जो आज के तीव्र भू-मंडलीकरण के युग में भी राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता और अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने का एकमात्र और सबसे शक्तिशाली आधारस्तंभ है।

सन्दर्भ सूची :

1. अहमद, शाह. (2025). वंदे मातरम: सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की पहली घोषणा. अमित शाह ब्लॉग।
2. अरविन्द, म. (1907). वंदे मातरम्. श्री अरविन्दो आश्रम प्रकाशन।
3. आडवाणी, ल. क. (2008). मेरा देश मेरा जीवन. प्रभात प्रकाशन।
4. उपाध्याय, द. (1965). एकात्म मानववाद. सुरुचि प्रकाशन।
5. कबीरदास. (विभिन्न संस्करण). कबीर ग्रंथावली (सं. बाबू श्यामसुंदर दास). नागरी प्रचारिणी सभा।
6. गुप्त, मै. श. (1912). भारत-भारती. साहित्य सदन, चिरगाँव।
7. चतुर्वेदी, मा. (1920). तिलक (कविता). प्रभा पत्रिका।
8. चतुर्वेदी, मा. (1922). पुष्प की अभिलाषा (कविता). कर्मवीर पत्रिका।
9. चतुर्वेदी, रा. (1996). हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास. लोकभारती प्रकाशन।
10. चट्टोपाध्याय, बं. च. (1882). आनंदमठ. राधारमण प्रेस।
11. चौहान, सु. कु. (1930). मुकुल (कविता संग्रह). इंडियन प्रेस।
12. दिनकर, रा. सिं. (1946). कुरुक्षेत्र. उदयाचल।
13. दिनकर, रा. सिं. (1952). रश्मिरथी. उदयाचल।
14. दिनकर, रा. सिं. (1956). संस्कृति के चार अध्याय. साहित्य अकादमी।
15. द्विवेदी, म. प्र. (1934, जुलाई). देश की भक्ति. सरस्वती पत्रिका।
16. द्विवेदी, ह. प्र. (1948). अशोक के फूल. राजकमल प्रकाशन।
17. नगेन्द्र, डॉ. (2012). हिन्दी साहित्य का इतिहास. मयूर पेपरबैक्स।
18. निराला, सू. त्रि. (1936, 26 अक्टूबर). राम की शक्तिपूजा. भारत (दैनिक)।
19. निराला, सू. त्रि. (1938). तुलसीदास. भारती भंडार।
20. निराला, सू. त्रि. (1939). अनामिका (द्वितीय संस्करण). भारती भंडार।
21. प्रसाद, ज. (1928). स्कन्दगुप्त. भारती भंडार।
22. प्रसाद, ज. (1931). चन्द्रगुप्त. भारती भंडार।
23. प्रसाद, ज. (1936). कामायनी. भारती भंडार।
24. बंद्योपाध्याय, कि. च. (1873). भारतमाता (नाटक). कलकत्ता।
25. मिश्र, वि. (1974). मेरे राम का मुकुट भीग रहा है. राजकमल प्रकाशन।
26. राम, वि. कु. (2017). आधुनिक साहित्य में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति. सोशल रिसर्च फाउंडेशन।
27. ऋषिकल्प, नी. (2021). हिन्दी साहित्य और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद. सीएसआईआरएस।
28. वाल्मीकि. (विभिन्न संस्करण). रामायण. गीता प्रेस, गोरखपुर।
29. वेदव्यास. (विभिन्न संस्करण). अथर्ववेद. गीता प्रेस, गोरखपुर।
30. वेदव्यास. (विभिन्न संस्करण). विष्णुपुराण. गीता प्रेस, गोरखपुर।
31. वेदव्यास. (विभिन्न संस्करण). भागवतपुराण. गीता प्रेस, गोरखपुर।
32. विवेकानंद, स्वा. (1897). लेक्चर्स फ्रॉम कोलंबो टू अल्मोड़ा. अद्वैत आश्रम।
33. शर्मा, रा. वि. (1979). निराला की साहित्य साधना (भाग–1). राजकमल प्रकाशन।
34. शुक्ल, आ. रा. (1999). हिन्दी साहित्य का इतिहास. नागरी प्रचारिणी सभा।
35. सरस्वती, द. (1875). सत्यार्थ प्रकाश. आर्य समाज।
36. सनेही, ग. श. (1915). राष्ट्रीय कविताएँ. प्रताप प्रेस।
37. सिंह, ओ. प्र. (2005). आधुनिक काव्य धारा: विचार और दृष्टि. लोकभारती।
38. सिंह. (2020). राष्ट्रवाद और सांस्कृतिक पहचान. आईजेआईआरसीटी।
39. हरिश्चंद्र, भा. (1880). भारत दुर्दशा. खड्गविलास प्रेस।
40. कोहेन, थ. (1944). द आइडिया ऑफ नेशनलिज्म. मैकमिलन कंपनी।
41. मिल, ज. स्टु. (1861). कंसिडरेशन्स ऑन रिप्रेजेंटेटिव गवर्नमेंट. पार्कर, सोन, एंड बोर्न।
42. हेस्टिंग्स, वा. (1772). डायरेक्टर्स मीटिंग रिकार्ड्स, बंगाल. ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी आर्काइव्स।